Review Of Research
ISSN: 2249-894X Impact Factor : 3.8014(UIF) Volume - 6 | Issue - 3 | December - 2016

मध्यकालीन साहित्य-शिक्षण की चुनौतियाँ : भाषाशास्त्र और काव्यशास्त्र

ओमप्रकाश बैरवा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग (दिल्ली विश्वविद्यालय)

प्रस्तावना :-

मध्यकालीन साहित्य हमारे हिन्दी साहित्य का सबसे प्रमुख और प्रभावी समय रहा है। क्योंकि इस समय ने जहाँ आदि काल से प्रेरणा ली वही आधुनिक समय के लिए मार्ग प्रशस्त किया। इतना ही नहीं मध्यकालीन साहित्य अपने आप में अपने संपूर्ण समाज का दर्पण है। जहाँ इस काल में सूर, तुलसी जैसे राम भक्त और कृष्ण भक्त कवि हुए वहीं जायसी, मंझन जैसे सूफी कवियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा सिर्फ हिन्दी साहित्य ही नहीं बल्कि संपूर्ण भारतीय साहित्य में अपना स्थान बनाया। हजारी प्रसाद द्विवेदी ने जिस कवि (कबीर) को 'वाणी का डिक्टेटर' कहा वह कवि भी मध्य काल की ही देन है। कबीर जो अपनी भाषा और अपने विचार से मध्यकाल से अब तक सभी के मन में बसे हुए है। मध्यकाल में जहाँ सूफी, संत, राम भक्त, कृष्ण भक्त कवि थे वहीं मध्य काल में एक ऐसा समय भी था जहाँ संस्कृतनिष्ठ काव्य परंपरा को आगे बढ़ाये

जाने और राजदरबारों के गुण-गान करने के लिए भी कवि ने अपने कदम पीछे नहीं किए। मध्यकालीन साहित्य के इस खण्ड को रीतिकाल नाम दिया गया।

मध्यकालीन साहित्य में कुछ ऐसे कवि हुए जो सीधे आम जनता से जुड़ गए, कुछ ने भक्ति को लोगों पहुँचाने के लिए साहित्य को अपना मार्ग चुना तो कई ऐसे साहित्यकार भी हुए जिन्हें न जनता से मतलब था और न भक्ति से वे बस राजाओं का गुणगान करके और काव्य को सजाने का काम किया। इनके इस प्रयास से काव्य तो भाषा, अलंकार के नाम में समृद्ध हो गए लेकिन साहित्यएक विशिष्ठ वर्ग तक ही सीमित होकर रह गया। आम जन से साहित्य का नाता ही टूट गया और इसका सबसे बड़ा और महत्वपूर्ण कारण रहा भाषा की जटिलता।

हम सभी इस बात को जानते है कि भाषा हमेशा प्रवाहमान रहती है और स्थान बदलने के साथ-साथ भाषा के रूप में भी बदलाव होता रहता है। आज जो हम खड़ी बोली हिन्दी का प्रयोग करते है वह न जाने हिन्दी भाषा के विकास की कौन सी कड़ी है।

आज हम हिन्दी का प्रयोग सिर्फ भाषा के रूप में नहीं करते है। बल्कि हिन्दी को एक विषय के रूप में लेकर आज कई विद्यार्थी अपना भविष्य बनाते है। इसी क्रम में देखा जाता है छात्रों की रूची जितनी आधुनिक काल की रचनाओं में होती है उतनी आदिकालीन और मध्यकालीन साहित्य विधा को पढ़ने या कहे कि उनका चयन करने में नहीं और जहाँ तक लगता है इसका सबसे बड़ा कारण उस समय की हिन्दी और आज की हिन्दी के बीच का अंतर। दूसरा इसका सबसे बड़ा कारण यह हो सकता है कि मध्यकाल में रचे हुए साहित्य का विषय और आज के साहित्य का विषय,दोनों में अंतर।

आज की शिक्षा पद्धति में समाज और समाज से जुड़े विषय पर जितना लेखकों का ध्यान रहता है उतना ही छात्रों का भी कि हिन्दी साहित्य के कौन से भाग को पढ़कर आसानी से भविष्य बन सकता है। इसलिए काव्यशास्त्र और भाषाशास्त्र को पढ़ने और पढ़ाने या कहे कि भाषाशास्त्र और काव्य शास्त्र से जुड़े शिक्षण के माध्यम में जो चुनौती का सामना करना पड़ रहा उसका सबसे बड़ा कारण है विषय और भाषा की समस्या। इसी कारण आज की पीढ़ी मध्यकाल से अपने आप को जोड़ नहीं पा रही है क्योंकि उस समय और आज के समय

की समस्यायें काफी अलग हो चूंकि है। यदि हम साहित्य के इतिहास का अध्य्यन करते है तो पाते है कि वही साहित्यकार अपने समय के बाद भी प्रसिद्ध हुआ जो आम जनता से जुड़ा। आम जनता से जुड़ना अर्थात् आम जनता के बारे में लिखना उनकी संवेदनाओं को अपनी रचना का विषय बनाना। इन सभी विषयों पर मध्यकाल पीछे रहा है। उस समय कबीर, रैदास जैसे कुछ ही रचनाकारों ने अपनी रचना को आम जनता पर केंद्रित किया। इसलिए वह आज भी उअतने ही प्रसिद्ध है जितने अपने समय में थे।

पूर्व मध्यकाल अर्थात् भक्ति काल में मुख्य रूप से चार प्रकार के कवि थे- राम भक्त, कृष्ण भक्त, सूफी, संत । इन सब की रचनाओं में काव्यशास्त्र या भाषाशास्त्रीय विवेचन बहुत कम मिलता है। लेकिन इन सब ने अपनी रचनाओं में सभी कष्टों का निवारण परमात्मा को माना और जीव की उत्पत्ति उस परमात्मा को पाने के लिए हुई है। कुछ एक कवियों को छोड़ कर सभी ने अपने आप को दास और भगवान को मालिक बताया है। इसलिए उनकी रचना भक्ति परक थी| ये भक्ति परक रचना आज के समय में भी पचलित है क्योंकि इहोंने जो अपने विचार व्यक्त करने का माध्यम चुना वो उस समय और आज दोनों समय में जनसाधारण से परिचित है। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि आज तुलसीदास की 'रामचरितमानस' जितनी प्रसिद्ध है उतनी उनकी अन्य रचना जैसे विनय पत्रिका या कवितावली नहीं । क्योंकि रामचरित मानस सरल अवधी में लिखा गया ग्रंथ है जिसका विस्तार भारत के कई प्रदेशों में ब्रजभाषा से ज्यादा है। इस लिए हिन्दी रचना के रूप में तुलसीदास 'रामचरितमानस' को जितनी ख्याति प्राप्त हुई है उतनी ख्याति उनकी अन्य रचनाएँ नहीं बटोर पाई। तुलसी दास जहाँ रामभक्त कवियों में थे तो कृष्ण भक्त कवियों में सूरदास का वही स्थान था। लेकिन सिर्फ ब्रज प्रदेश को छोड़ सूरदास की रचनाएँ ज्यादा लोगों तक नहीं पहुँच पाई। इसका भी कारण हम भाषा को ही मान सकते है। मधयकाल में सगुण धारा के प्रतिनिधि कवि दोनों थे वहीं इसके अलावा नंददास, अग्रदास, विष्णुदास, परमानंद दास, छीतस्वामी आदि प्रमुख भक्त कवि थे लेकिन आज के समय में शिक्षण की बात जब भी सामने आती है तब छात्रों की रूची सबसे ज्यादा सूर और तुलसी को पढ़ने की होती है क्योंकि इन्होंने जनता के अन्दर परमात्मा के प्रति भक्ति को जगाया। इतना ही नहीं पूर्व मध्यकाल अर्थात् भक्तिकाल में सगुण धारा के साथ-साथ जो एक और भक्ति धारा चल रही थी वो थी निर्गुण भक्ति धारा रामभाक्त और कृष्ण भक्त की तरह ये भी दो अलग-अलग प्रकार से बढ़ रही थी-" सूफी और संत के रूप में" इसमें सूफी काव्य तो लोगों को शांति पहुँचाते थे लेकिन अपनी भाषा और एक निश्चित रचना शैली के अनुसार काव्य रचना करने की परंपरा के अनुसार ये रचनाएं आपस में बंध सी गई। फारसी शैली में भरतीय शब्द जो भारतीय परंपरा से थोड़ा इन्हें अलग करते है। सूफी रचनाएं आत्मा को शांति पहुंचाती है लेकिन आज के समय में सभी साहित्य को समाज का दर्पण मानते है और इसी लिए इस प्रकार की रचनाएं एक सीमित समय में आकर रूक सी गई। जहां बात मध्यकालीन संत कवियों की करें तो यह स्पष्ट है कि मध्यकाल के सभी चारों धाराओं में सबसे प्रसिद्धि संत कवियों को ही प्राप्त हुई। इसके पीछे सबसे बड़ा कारण यह हो सकता है कि इन संत कवियों ने अपनी रचनाओं का अधार आम जन के विषय को बनाया। इनकी ज्यादतर रचनाएँ समाज में व्याप्त विद्रुप्ताओं पर केन्द्रित है। इस लिए ये आज भी उअतने ही प्रसिद्ध है जितने अपने समय में थे।

भाषा के विषय को लेकर चर्चा करें तो यह स्पष्ट होता है कि संत कवियों के विचार आज की पीढ़ी को काफी हदतक प्रभावित करते हैं और संत कवि खासकर कबीर की पंक्तियों का प्रयोग सभी चाहे व हिन्दी साहित्य से जुड़ा हो या नहीं हो करते है। क्योंकि इनकी रचना धर्म, समाज और भाषा की बंदिशों से परे थी।

अब यदि बात उत्तर मध्यकाल अर्थात् रीतिकाल की करें तो यह हम पाते है कि आज का हिन्दी साहित्य जिस मध्यकालीन शिक्षण की समस्या से जुड़ा हुआ है क्योंकि संस्कृत काव्यशास्त्र की परंपरा के अनुसार जिन काव्य ग्रंथों का निर्माण हुआ जो कि लक्षण ग्रंथ कहलाएं उनकी सबसे ज्यादा रचनाएं इसी समय में हुई। संस्कृत काव्य परंपरा के अनुसार काव्य लिखने की परंपरा तो सूरदास ने 'साहित्य लहरी', नंददास ने 'रस मंजरी' आदि में की थी। लेकिन जो सघनता या कहे कि जिस हिसाब से काव्यशास्त्र ने जोड़ पकड़ा वह रीतिकाल में ही देखा जा सकता है।

रीतिकाल के प्रवर्तक आचार्य केशव दास माने जाते है। ये अलंकारवादी आचार्य थे और अलंकार को काव्य की आत्मा मानते थे। उनका यह कथन--

"जदपि सुजाति सुलच्छनी सुवरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न बिराजई कविता बनित मित्त॥

अर्थात् भले ही कोई स्त्री सुजाति हो, सुलक्षणा हो , सुनदर वर्ण वाली हो, सरस एवं सुवृत्त हो, किंतु जब तक वह आभूषण धारण नहीं करती तब तक शोभा नहीं पाती। यही स्थिति कविता की भी है। अन्य अनेक गुणों से सम्पन्न होने पर भी यदि कविता अलंकारों से रहित है, तो वह शोभा नहीं पाती। इनकी काव्यशास्त्रीय ग्रंथों में कविप्रिया, रसिकप्रिया और छन्दमाला प्रसिद्ध है। 'कविप्रिया' में 16 प्रभावों के अंतर्गत काव्य रचना के उपयोगी विषयों जैसे- काव्य दोष, अलंकार, नख-शिख, आदि का समावेश है। 'रसिकप्रिया' में रस दोष तथा वृतियों का विवेचन है साथ ही श्रृंगार रस एवं नायिका भेद का विस्तार से वर्णन है । 'छन्दमाला' में छन्दों के लक्षण एवं उदाहरण दिए गए है। सिर्फ केशव ही नहीं चिंतामणि जो रसवादी आचार्य थे और अलंकार को काव्य की शोभा बढ़ाने वाला तत्व मानते थे। उनके अनुसार -

"अलंकार ज्यों पुरुष कों हारदिक मन आनि।"

अर्थात् अलंकार को ऐसा समझना चाहिए जैसे पुरूष के लिए हार आदि है।

चिंतामणि के कई महत्वपूर्ण ग्रंथ उपलब्ध होते हैं जैसे-कविकुल कल्पतरु, काव्यविवेक, रस विलास एवं श्रृंगार मंजरी । इनमें नायक नायिका भेद, काव्यगुण, अलंकार शब्द शक्ति आदि का विवेचन किया गया है।

उपर्युक्त सिर्फ दो कवियों के विवरण से हमें यह स्पष्ट होता है कि मध्यकाल में काव्य की सुंदरता को बढ़ाने के लिए काव्य को अलंकार से सजाया जाता था। कवियों के इस प्रयास से काव्य जितना सुंदर हुआ साहित्य का विस्तार आम जनता तक पहुँचने से रूक गया।

आज के संदर्भ में यदि इस बात की चर्चा की जाए तो अलंकार के माध्यम द्वारा कविता को सजाने की परंपरा लगेगी कब की खत्म हो चुकी है। आज का साहित्य मुख्यत: गद्यात्मक साहित्य है। उपन्यास, कहानी, निबंध, यात्रा वृत्तांत आदि सभी में समाज की समस्याओं को दिखाया जा रहा है।

आधुनिक काल में कविता न सिर्फ राजदरबारी परंपरा से मुक्त हुई बल्कि आधुनिक काल के भारतेन्दु युग से ही कविता को छन्द और अलंकार के बंधनों से भी मुक्त कर दिया। साहित्य को भारत की आज़ादी के मार्ग में बढ़ने का रास्ता बनाया। राजाओं की प्रशंसा, भगवान की दास भक्ति या आत्मा से परमात्मा के मिलन से साहित्य का ध्यान हटाकर यथार्थवाद की प्रतिष्ठा साहित्य में की। प्रगतिवादी वादी कवि नागार्जुन की कविता 'बादल को घिरते देखा है' में साहित्य को कल्पना से हटाकर सच की पृष्ठभूमि पर लाकर खड़ा कर दिया। कविता की पंक्तियाँ--

'अवल धवल गिरी के शिखरों पर
बादल को घिरते देखा है ...
उसके चंचल तूहीण कणों को
मानसरोवर के उन स्वर्णिम
कमलों पर गिरते देखा है .....
कहाँ गया धनपति कुबेर वह
कहाँ गई उसकी वह अलका

नहीं ठिकाना कालिदास के
व्योम प्रवाही गंगाजल का
जाने दो वह कवि कल्पित था....'

इन पंक्तियों में कवि ने संस्कृत आचार्यों की कल्पना को यथार्थ से तुलना किया है। इतना ही नहीं "भारत दुर्दशा" नाटक में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र की पंक्तियाँ:-

"अंग्रेज राज सुख साज सजे सब भारी।
पै धन विदेश चली जात यहै अति ख्वारी॥

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने इन पंक्तियों के माध्यम से तत्कालीन स्वतंत्रता की समस्या को साहित्य का विषय बनाया। इतना ही नहीं मदिरा, आलस,चापलूसी जैसे चरित्रों का वर्णन करते हुए समाज में फैले इन बुराइयों पर भी ध्यान दिया।

महावीर प्रसाद द्विवेदी ने जब 'सरस्वती' पत्रिका में उर्मिला विषयक कवियों की उदासीनता का वर्णन किया तब इससे सिर्फ लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के जीवन के कष्टों का पता नहीं चला। बल्कि उस लेख का उद्येश्य समाज में हीन समझी जाने वाली स्त्री जाति के कष्टों को सब के सामने लाए।

आज की पीढ़ी का रुझान कविता में सुदरता खोजना नहीं रहता बल्कि कविता के मूल विषय को समाज और आज की समस्या से कैसे जोड़े यही ध्यान रहता है। मध्यकालीन साहित्य शिक्षण की चुनौतियाँ- काव्यशास्त्र और भाषाशास्त्र इसलिए सामने आ रही है कि छात्र विषय ढूंढ रहे है नकि आलंकारिकता।

वास्तव में साहित्य तो वही होता जो अपने समाज को सामने लाए। मध्यकालीन काव्य ने सिर्फ जहाँ औरतों के अंग प्रत्यंग की चर्चा कर अपने काव्य को राजाओं के भोग- विलासिता का एक साधन बना दिया था वहीं आधुनिक काल में निराला की 'वह तोड़ती पत्थर' कविता स्त्री के कुरूपता में भी रूप निखार कर सामने लाती है।

आज साहित्य का मकसद ही समाज की समस्या को सामने लाना है। चाहे लोक भाषा में हो या आम जन की भाषा में । इसलिए काव्यशास्त्र और भाषा शास्त्र शिक्षण की मुश्किलें सामने आ रही है । क्योंकि छात्र और शिक्षक सिर्फ अध्ययन-अध्यापन के दौरान ही इन सभी विधाओं से परिचित होते है। आम तौर पर न के बराबर ही इसका प्रयोग होता है।

आज मध्यकालीन शिक्षण की चुनौतियाँ बढ़ते जा रही है । इसका एक कारण यह भी हो सकता है कि आज का साहित्य गद्य प्रधान साहित्य है। साहित्य रचने के लिए साहित्यकार अलंकार युक्त भाषा का प्रयोग न करके जनसाधारण की भाषा का प्रयोग कर रहे है। ताकि साहित्य को समाज का दर्पण कथित वाक्य को प्रमाणित किया जा सके। इन चुनौतियों का सामना करने के लिए मध्यकालीन काव्यशास्त्र और भाषाशास्त्र को विद्यालय स्तर से ही शुरू कर देना चाहिए ताकि विद्यार्थी शुरूआत से ही इनसे परिकित हो और इनकी तुलना हमेशा आज के संदर्भ में होनी चाहिए। यदि इस समस्या पर गंभीरता से ध्यान नहीं दिया गया तो हमारे हिन्दी साहित्य का मध्यकाल धीरे-धीरे आज की पीढ़ी से दूर होता जाएगा और आगे सिर्फ परीक्षा पास करने के उद्येश्य में ही यह सिर्फ एक भूमिका निभाएगा।

ओमप्रकाश बैरवा
शोधार्थी, हिन्दी विभाग (दिल्ली विश्वविद्यालय)